Jain Historiography
जैन इतिहास लेखन

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में जैन साहित्य भी बौद्ध साहित्य की तरह ही उपयोगी साबित हुए हैं। जैन साहित्य में भी प्राचीन भारतीय इतिहास के संबंध में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध है। यह साहित्य जैन धर्म के दो मुख्य सम्प्रदायों - श्वेताम्बर एवं दिगम्बर में विभाजित है। इन दोनों सम्प्रदायों के न केवल धार्मिक साहित्य में भिन्नता है अपितु अनुश्रुति एवं आख्यानों के साथ संबंध रखने वाला उनका साहित्य भी अलग-अलग है। यही कारण है कि कभी-कभी इस साहित्य से परस्पर विरोधी तथ्य प्रकाश में आते हैं। अंग और उपांग के रूप में प्राप्त जैन साहित्य सातवीं शताब्दी ई.पू. से लेकर 12वीं शताब्दी तक के इतिहास के विभिन्न पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। जैन विचारों का प्रचार सातवीं सदी ई. पूर्व में ही पार्श्वनाथ के द्वारा आरम्भ हो गया था, जिन्हें जैन धर्म का 23 वां तीर्थंकर माना गया। जैन धर्म के 4 मूलभूत सिद्धान्तों — अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह (संपत्ति इकट्ठा न करना) को स्थापित करने का श्रेय पार्श्वनाथ को ही दिया जाता है। वर्धमान महावीर, जिन्हें जैन धर्म का पाँचवाँ तथा अन्तिम तीर्थंकर माना गया है, ने जैन धर्म में पाँचवा सिद्धान्त ब्रह्मचर्य जोड़ा। जैन मत के अनुसार सम्पूर्ण ज्ञान का मूल स्त्रोत द्वादश श्रुत हैं जो परम्परा द्वारा महावीर तक मौखिक ज्ञान के द्वारा सुरक्षित रहा। इस अन्तिम तीर्थंकर महावीर के उपदेशों का बारह प्रधान अंगों में वर्गीकरण और विन्यास उनके मुख्य शिष्य इन्द्रभूति गौतम द्वारा किया गया, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण अंग बारहवाँ है जिसे दृष्टिप्रवाद कहा जाता है। इसके भी पाँच विभाग हैं, जिनमें पूर्वा महत्वपूर्ण है। दृष्टि प्रवाद महावीर तक के पारम्परिक इतिहास का वर्णन करता है। यह सम्पूर्ण ज्ञान चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन जैन भिक्षु भद्रबाहु के समय तक सुरक्षित रहा, पर इसके बाद क्रमशः लुप्त होने लगा और ई. सन् के प्रारम्भ में मूल आगमों का केवल कुछ भाग शेष रहा। इसलिए जैनों के

दिगम्बर सम्प्रदाय ने इस दिशा में पहल की और न केवल पारम्परिक शास्त्रों का पुनरुद्धार किया, अपितु नये और स्वतंत्र ग्रंथों का भी प्रणयन किया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने कई शताब्दियों तक शास्त्रों को लिपिबद्ध करना अनुचित माना और पाँचवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उन्होंने अपने आगमीय परम्पराओं का सम्पादन किया।

इस प्रकार, जैन धर्म का अभ्युदय छठी शताब्दी ई.पू. में ही हो गया था लेकिन जैन साहित्य लेखन का कार्य तीसरी शताब्दी ई. पूर्व में आरम्भ हुआ, जिसमें जिन महावीर की शिक्षाओं का संग्रह और लेखन किया गया। लेकिन उनका अंतिम संकलन बहुत आगे चलकर छठी शताब्दी के आरम्भ में (153० ई. या 526 ई.) वलभी में आयोजित जैन परिषद् में किया जा सका, जो जैन आगम कहलाया।

इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण जैन साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण जैन आगम ही हैं। जैन आगम में प्रसिद्ध स्थान बारह अंगों का है, जिनमें प्रमुख हैं — आचरांग सूत्र, भगवती सूत्र, नायाधम्मकहा, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अनुन्तरोपपादिकदशा, विवागसुयम सुत्त आदि। आचरांग सूत्र में जैन भिक्षुओं के आचार नियमों का उल्लेख है। भगवती सूत्र में जैन धर्म के सिद्धान्त, स्वर्ग व नरक का वर्णन, महावीर व उनके समकालीन मुनियों की कथाओं पर प्रकाश पड़ता है। इसमें सोलह महाजनपदों का भी उल्लेख है। नायाधम्मकहा में महावीर की शिक्षाओं का संग्रह है। उवासगदसाओ में दस जैन व्यापारियों द्वारा धर्म पालन कर मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन है। अंतगडदसाओ तथा अनुन्तरोपपातिक दशा में प्रसिद्ध भिक्षुओं की जीवन कथाएं हैं। विवागसुमयसूत्त में कर्मफल का विवेचन है। जैन आगम के बारह अंगों में प्रत्येक का उपांग भी है। इन पर अनेक भाष्य लिखे गए जो निर्युक्ति, चूर्णि तथा टीका कहलाते हैं। भद्रबाहुचरित से चन्द्रगुप्त मौर्य के राजकाल की घटनाओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से वसुदेव हिण्डी, वृहत्कल्प सूत्र भाष्य, आवश्यक चूर्णि, कालिका पुराण तथा कथाकोश भी महत्वपूर्ण जैन ग्रंथ हैं। पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण हेमचन्द्र कृत परिशिष्ट पर्वन है जिसकी रचना ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुई। इसमें मौर्यकाल तक के मगध सम्राटों की चर्चा हुई है।

पूर्व मध्यकाल में अर्थात् 600 ई० से 1200 ई० तक में

अनेक जैन कथा कोशों एवं पुराणों की रचना हुई। जैसे- हरिभद्र सूरि (705-775 ई.) ने समरादित्यकथा, धुरतारव्यान और कथाकोश की रचना की। उद्योतन सूरि ने 778 ई. में कुवलयमाला, सिद्धर्षि सूरि ने 605 ई. में उपमिति भव प्रपंच कथा तथा जिनेश्वर सूरि ने कथाकोषप्रकरण की रचना की। नवीं शताब्दी में जिनसेन ने आदि पुराण तथा गुणभद्र ने उत्तर पुराण की रचना की। ये सभी रचनाएँ जैन इतिहास लेखन का स्तंभ हैं, जो तत्कालीन भारतीय समाज एवं धार्मिक दशा पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। नवीं शताब्दी तक तो जैन ग्रंथों में भारत के सामान्य इतिहास के प्रति रुचि दिखाई पड़ती है, अर्थात् वे मगध, सातवाहन, शक, गुप्त, कान्यकुब्ज शासन वंशों की बहुविधि चर्चा करते हैं। पर इसके पश्चात् जैन मालवा, राजस्थान एवं गुजरात तक में ही सीमित हो गए एवं उन्होंने इन क्षेत्रों के इतिहास लेखन में योगदान दिया।

जैन इतिहास लेखन परम्परा में आचार्य विमल की पद्म चरित भी महत्वपूर्ण है जिसकी रचना 200 ई. में हुई जिसमें राम कथा लिखी गई है। इस राम कथा के राम वाल्मीकि के राम से बिल्कुल विपरीत है। उसने रावण को जैन बताया है। वस्तुतः जैन इतिहासकारों ने ब्राह्मण इतिहास को इस तरह से प्रस्तुत किया कि उनके सिद्धान्तों में कहानियाँ अधिक विवेकपूर्ण और सत्य प्रतीत हैं। साथ ही उन्होंने जैन तीर्थंकरों की सूचियों और उपाख्यानों को देकर भारतीय कालानुक्रम को निर्धारित करने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जैन इतिहासकारों ने उपाख्यानों पर आधारित इतिहास की रचना की है। इनमें से एक कथानक कालकाचार्य है जो एक अज्ञात इतिहासकार द्वारा लिखा गया है। इसमें विक्रमादित्य का कथानक है। इसमें शक और सीथियन का उल्लेख है जिन्हें विक्रमादित्य अर्थात् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पराजित किया था। विशाखदत्त के नाटक देवी चन्द्रगुप्तम से इस तथ्य की पुष्टि होती है। उसने शकों के पराजय के कारणों का भी उल्लेख किया है। V.S. Pathak कहते हैं कि हमें उपाख्यानों से ऐतिहासिक तथ्यों को खोज निकालना है।

जैन इतिहास लेखन परम्परा में पट्टावलियाँ और गुरुवावलियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। इनका संबंध धार्मिक इतिहास से है, जिनमें जैन साधकों के संघों, गणों, गच्छों आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त इनमें गुरुओं की वंशावलियाँ,

उनकी उपलब्धियाँ, उनके संरक्षकों के नामों के साथ-साथ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक सूचनाएँ भी प्राप्त होती हैं।

कुछ ऐतिहासिक जैन पुरुषों जैसे- पार्श्वनाथ, महावीर, गौतम, जम्बु, भद्रबाहु, करकण्डु, श्रेणिक, अभयकुमार, जीवनधर, सुदर्शन सेठ, कालकसूरि, पूज्यपाद, अकलंक आदि के जीवन से संबंधित कथाओं को जीवनचरितों के रूप में लिपिबद्ध किया गया है जिनसे इनके आध्यात्मिक जीवन एवं धार्मिक कृत्यों की जानकारी मिलती है।

जीवन चरितों की तरह प्रबंध भी जैन इतिहास लेखन की एक विधा है जिनमें जैन धर्म से संबंधित ऐतिहासिक व्यक्तियों का वर्णन मिलता है। इनका प्रणयन मुख्य रूप से गुजरात के श्वेताम्बर विद्वानों ने किया। अतः ये विशेष रूप से गुजरात के इतिहास लेखन में सहायक हैं।

जैन साहित्य में प्रशस्तियों का स्थान भी इतिहास लेखन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, ये तीन प्रकार की हैं -

1. रचयिताओं की प्रशस्तियाँ, जिनमें उनकी गुरु परम्परा, रचना का उद्देश्य, स्थान, काल तथा तत्कालीन शासक का नाम मिलता है।
2. लेखक प्रशस्तियाँ, जिनमें लिपिकार तथा प्रतिलिपि कराने वालों का उल्लेख मिलता है।
3. दानकर्ताओं की प्रशस्तियाँ, जिनमें दानकर्ता के वंश और दान प्राप्त करने वाले गुरु का वर्णन प्राप्त होता है। भारतीय इतिहास लेखन में ये प्रशस्तियाँ भी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान करती हैं।

इस प्रकार जैन इतिहास लेखन भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह न सिर्फ महावीर एवं जैन धर्म के सिद्धान्तों और उपदेशों पर प्रकाश डालता है बल्कि विभिन्न कालों (तीसरी शताब्दी ई. पूर्व से 12 वीं शताब्दी तक) के सामाजिक एवं धार्मिक अवस्थाओं तथा कतिपय राजनीतिक घटनाओं पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है।